eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

वर्ण व्यवस्था से जाति–व्यवस्था का विकास

कु0 आँचल[1]
[1]शोधार्थिनी, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Received: 20 Jan 2026, Accepted: 25 Jan 2026, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2026

Abstract

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक दीर्घकालिक सामाजिक संस्था रही है, जिसका स्वरूप समय के साथ व्यापक परिवर्तन से गुजरा है। 12 वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में संक्रमण का युग माना जाता है. जहाँ एक और धर्मशास्त्रीय परंपरायें अपने चरम पर थीं, वहीं दूसरी ओर तुर्क–अफगान आक्रमणों और नये राजनीतिक सामाजिक सम्पर्को ने जाति व्यवस्था को नए रूप में परिवर्तित किया। प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण में 12वीं शताब्दी के पूर्व और पश्चात् भारतीय जाति संरचना की तुलना की गयी है, जिसमें वर्णव्यस्था से जाति–व्यवस्था में क्रमिक परिवर्तन, पेशागत स्थिरता, अस्पृश्यता का उभार तथा कई नवीन उपजातियों का निर्माण तथा वर्तमान समय में जाति व्यवस्था का क्या स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, इत्यादि कारण परिणामों का विश्लेषण शामिल है।

मुख्य शब्द– वर्ण व्यवस्था, जाति–व्यवस्था, सामाजिक स्तरीकरण, जन्म आधारित असमानता, कर्म से जन्म का परिवर्तन, सामाजिक गतिशीलता का अभाव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधार, पेशागत विभाजन

Introduction

प्राचीन भारत में जाति-व्यवस्था मूल रूप से 'वर्ण' पर आधारित थी, और गुण. कर्मों को देखकर यथायोग्य अधिकार जिसको दिया जाये वह वर्ण है वेद, स्मृतिकार इसी कथन का समर्थन करते हैं। चर्तुवर्णव्यवस्था (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र) समय के साथ यह व्यवस्था कठोर होती गयी । मध्यकालीन. प्रारम्भिक आधुनिक भारत में विभिन्न शासक अभिजात वर्गद्वारा इसे रुपान्तरित किया गया विशेष रूप से 'मुगल साम्राज्य' के पतन और ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद जातिव्यवस्था । भारतीय समाज की रीढ़ बन गयी और अस्पृश्यता जैसी प्रथाओं को जन्म दिया

12वीं शताब्दी के पूर्व यह वर्ण-मूलक अपेक्षाकृत लचीली और स्थानीय विविधताओं वाली थी, जबकि 12वीं शताब्दी के बाद यह कठोर, उत्तराधिकार आधारित और पेशागत स्थिरता वाली हो गयी। यह शोध चरण दो ऐतिहासिक चरणों के आधार पर जाति-व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है-

प्रथमचरण- वैदिक, उत्तरवैदिक, गुप्तोत्तर काल (1000 ई.पू.), तक द्वितीयचरण- 12वी. शताब्दी के बाद का मध्यकाल (1200-1700 ई.पू.)

वर्णव्यवस्था शब्द सामान्यतः 'जातिवाद' का द्योतक माना जाता है। और यही कारण है, कि ऊंच-नीच की भावना का प्रेरक भी लगता है। वर्ण शब्द किसी धर्म, मत,पंथ,सम्प्रदाय को विशेषरूपेण प्रस्तुत नही करता है। सर्वप्रथम वर्णव्यवस्था का स्वरूप वैदिककाल में उल्लेखित होता है। वास्तव में वर्ण' शब्द वर्ग विशेष को सम्बोधित करते हुये उसके कार्यों का कथन (निर्देश) करता है। कुछ विद्वान वर्ण तथा जाति शब्द का समर्थक मानते किन्तु दोनों के मूल में अन्तर है। '**जाति**' शब्द '**जनी प्रार्दुभावे**' धातु से निष्पन्न होता है, जो जन्म अथवा योनि विशेष सम्बन्ध रखता है। वही '**वर्ण**' शब्द **'वृ वरणे'**

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ (चुनना या वरण) करना होता है। ध्यातव्य है कि जाति मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी आदि में भी होती है, किन्तु वर्ण केवल मानव जाति में ही संभव है। अतः वर्ण तथा जाति दोनों मूलतः पृथक है। किन्तु वर्तमान समय में वर्ण शब्द प्राय: चर्चा का विषय बना है, उसका स्थान जाति ने ले लिया है। वर्णव्यस्था से जाति व्यवस्था के परिवर्तन में क्या तत्त्व प्रभावित किये और इसके स्वरूप में क्या किञ्चित (परिवर्तन) हुये इसकी चर्चा कि जायेगी।

वैदिक साहित्य में जाति के आधुनिक अर्थ का प्रयोग नहीं हुआ है प्रत्येक मनुष्य के जीवन में समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वैदिक काल में (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) इन चर्तुवर्णव्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है, कि जिस समय आर्य सप्तसिन्धु में निवास करते थे, तब आर्यों-अनार्यों के मध्य युद्ध में आर्यों की विजय हुयीऔर आर्यों ने अनार्यों को दास बनाया तथा उनको अपने समाज का अंग बना लिया। इस तरह आर्यों-अनार्यों में वर्ण भेद हो गया। इस वर्णव्यवस्था में उन्होनें अनार्यों या दस्युओं को भी जगह दी। ऋग्वेद के पुरुष सुक्त (१०.१०) में चारों वर्ण क्रमशः मुख , भुजा, जंघा व पैर से क्रमशः ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की उत्पत्ति का वर्णन करता है- **'ब्राहमणोस्य गुणमासीद्बाहु राजन्यः कृतः । उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोजायत ।। (ऋ ०-10.90.12)** पुरुष सूक्त के अन्दर वर्णव्यवस्था केवल अर्थशास्त्र के कार्य. विभाजन पर आधारित थी। इसमें कहा गया है कि जिस तरह शरीर के सभी अंग एक दूसरे से संबंधित है, उसी तरह वर्णव्यवस्था भी जीवित समाज का लक्षण है। वास्तव में प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था को उपयोगी माना जाता था और राजा इस व्यवस्था के संचालन के लिये उत्तरदायी था। उसके द्वारा सभी वर्णों को अपने-अपने कर्तव्य करने की प्रेरणा दी जाती थी। वैदिक काल से महाभारत काल तक वर्णव्यवस्था अपने पूर्ण रूप में समाज मे लागू थी। 'पुरुषसूक्त' के अध्ययन से पता चलता है कि शूद्र भी किसी अन्य जाति के नहीं थे और चारो वर्ण आर्य थे- **'पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्'** वेदों में समानता के व्यवहार का भी पता चलता है। इसलिये सेवा कार्य के कारण शूद्रों को उस समय निम्न स्थान प्राप्त नही था, बल्की बराबर का दर्जा प्राप्त था। समाज के विकास के लिये से चारों वर्ण उपयोगी थे। किसी एक के बिना बाकी तीनों वर्ण अधूरे माने जाते थे। यद्यपि शूद्रों को अध्ययन अध्यापन का कार्य नहीं दिया जाता था फिर भी उनमें से कुछ मन्त्रदृष्टा ऋषि भी थे। 'ऐतरेय बब्राम्हण' व 'कौशितकी ब्राहमण' में 'एलूस कवष का वर्णन प्राप्त होता है, जो शूद्र मंत्र द्रष्टा ऋषि थे। ऋग्वेद के समय से ही वर्णव्यवस्था कुछ विशेषताओं से मण्डित हो चुकी थी तथा 'रामायण काल' में जो कि वैदिक काल के बाद आता है यह और अधिक विकसित हो गयी। रामायण काल में वर्णव्यवस्था को स्थायित्व मिला और अब यह जन्म पर आधारित होने लगी तथा व्यवसायिक वर्ण विभाजन के स्थान पर पैतृक वर्ण विभाजन शुरू हो गया। इस तरह रामायण काल में वर्ण-विभाजन अपरिवर्तनशील बन गया तथा ब्राहमण व क्षेत्रिय दोनों को प्रमुष स्थान प्राप्त हुआ। वाल्मिकी रामायण में भी ब्राहमण धर्म की भाँति क्षत्रिय धर्म की मर्यादा का उल्लेख हुआ है। राम को क्षत्रिय धर्म का उदाहरण माना जाता है। इस समय समाज में वैश्यों का भी विशेष महत्त्व था। यहाँ सामाजिक संगठन की रूपरेषा में शूद्रों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये थे। (वाल्मिकी रामायण, 76वां अध्याय) इस तरह रामायण में चारों वर्णों की पूर्णांग व्यवस्था का रूप मिलता है। इसमें ब्राहमण वर्ण के प्रति क्षत्रिय वर्ण अपनी श्रध्दा अर्पित कर उसे श्रेष्ठ मानते थे ।

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

ब्राह्मण वर्ण- चूंकि ब्राह्मणकाल में ब्राह्मण वर्ष को श्रेष्ठ दर्जा प्राप्त था और यह दर्जा वैदिक काल से चला आ रहा था। मनुस्मृति (1/88) में मनु ने ब्राह्मणके प्रमुख कर्मों का निर्देश करते है- **"अध्यापनमध्ययने यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्मैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।"**

अर्थात् ब्राह्मणों को पढ़ना- पढाना तथा यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना ये (6) कर्म है। वहीं **महाभारत (भीष्मपर्व)** के **(गीता**), में ब्राह्मण के कर्तव्य बतायें है- '**यथा शमो दमस्तपः शौच शान्तिरार्जवमेव च' ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥'** वर्णकर्मों का वर्णन ब्राह्मणों में भी उद्धृत है- **आग्नेयो ब्राह्मण' (ताण्ड्य ब्रा० 15/4/8)** '**आग्नेयो हि ब्राह्मणः' (को०ब्रा० 29/10), ब्रामणो व्रतभृत** (तै०सं० 1/6 /7/12) तथा **'गायत्रो वै ब्राहमणः'** (ऐ०ब्रा० 1/28) **'गायत्रो यज्ञः'**(गो०ब्रा04/24) अर्थात् इस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ कर्मों को धारण करने वाला होता है।

क्षत्रिय वर्ण - क्षत्रिय -कौन? क्षत्रिय तेजस्विता बल और कार्यशक्ति का प्रतीकहै। '**क्षदति रक्षति जनम्न क्षत्रः**' अर्थात जो जनता की रक्षा करता है अथवा **'क्षण्यते हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन स क्षतः**
अर्थात लोगों की हिंसा आदि से रक्षा करने वाले क्षत्रिय कहलाता है। मनुस्मृति (1.89) में' प्रजा की रक्षा तथा न्याय करने वाला और पक्षपात छोड़कर श्रेष्टों का सत्कार दुष्टों का तिरस्कार करना, सबका पालन करना, विद्या धर्म, दान, यज्ञ करना, कराना मुख्य कर्तव्य है - **"प्रजानां रक्षणं दान मिज्याध्ययनमेव च । विजयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।** ब्राहमण ग्रंथों में **'क्षत्रंराजन्यं'** (ऐ०ब्रा०8/2-3/4), '**क्षत्रस्य वा एतदूपं वा यद्राजन्यः'** । (श०ब्रा० 13/1/5/3) वही 'महाभारत' में 'क्षत्रिय कर्म का वर्णन इस प्रकार है **"शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् " ।** (महाभारत 18/43)

वैश्यवर्ण- वैश्यका समाज में तीसरा स्थान था, मुख्यतः इनका कार्य कृषि था। वैश्य का अर्थ- '**यो यत्र यत्र व्यवहारविद्यासू प्रविशति सः वैश्य, व्यवहारविद्याकुशलः जनो वा**" जो विविध व्यावहारिक व्यापारों में प्रविष्ट रहता है, या विविध व्यावहारिक विद्या में प्रवीण होता है वह वैश्य है। वैश्य के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है- **'पशूना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।वाणिक्पथं कुसीद च वैश्यस्य कृषिमेव-च।** (मनु० 1/90) पशुओं आदि का पालन करना, दान,विद्या करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना, इज्या अग्निहोत्रादि यज्ञ करना, वाणिक्य- अर्थात् सब प्रकार के व्यापार करना कुसीद एक सैकड़े में चार आना. 6,8,12,16,20 आनों से अधिक व्याज और मूलधन का दूना अर्थात् एक रूपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रूपये से अधिक न लेना और न देना, कृषि करना वैश्य के गुण कर्म है।'**गीता**' में खेती, गोपालन और क्रय-विक्रय, सत्य व्यवहार ये वैश्य के स्वभाविक गुण कर्म है - कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभाववम् (78 /44) वहीं ब्राह्मणग्रथों में- **'एतद् वै वैश्यस्य समृद्ध यत् पशवः'** (ता०ब्रा०18/4/6)और '**तस्माद् बहुपशुनैश्वदेवो हि जागतो वैश्यः**' (ता०ब्रा० 6/1/10) अर्थात् पशुपालन से वैश्य की समृध्दि होती है, यह कर्तव्य वैश्य का है।

शूद्रवर्ण- वह है. जिसे पढ़ने पढ़ाने पर भी कुछ न आये। अर्थ है-'**शोचनीयः शोच्या स्थितिमापन्नो वा, साधुविद्ययादिगुणसहितो मनुष्यो वा**' अर्थात् शूद्र वह है, जो अपनें अज्ञान के कारण किसी प्रकार की उन्नत स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता, और उसे उन्नत करने की सदैव चिन्ता बनी रहती है। तात्पर्य हुआ जो केवल सेवा शुश्रूषादि कार्य ही कर सकता है, ऐसा मनुष्य शूद्र होता है-

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

'एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समाविशत् । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।" (मनु० 1/91)

अर्थात् निंदा,ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय भऔर वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन चलाना यही शुद्र का कर्म, गुण है। 'गीता' में श्रीकृष्ण भी कहते है- **'परिचर्यात्मकं कर्म शुद्रस्यादि स्वभावजम'** (भगवद्गीता18/44) सभी वर्णो की सेवा करना शुद्र का स्वाभाविक कर्म है। ब्राह्मणग्रन्थों में- 'असतो वा एष सम्भूतो यत् शुद्रः (तै० ब्रा० 3/2/3/9) तात्पर्य है अज्ञान और अविद्या से जिसकी निम्न जीवनस्थिति रह जाती है, जो केवल सेवादि कार्य ही कर सकता है।

इस प्रकार शास्त्रोक्त दृष्टि से हमनें वेदोक्त वर्णव्यवस्था को समझने का प्रयास किया। 'मध्यकाल' में कुछ अनर्थकारी असामाजिक तत्वों नें अनर्गल प्रलाप आरम्भ किया, ऐसी विषम परिस्थिति, विषम भावनायें क्यों उत्पन्न हुयी? जहां विराट पुरुष के मुख से (चतुर्वर्णव्यवस्था) को उत्पन्न बताया गया इस काल में व्यक्तियों का वर्ण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार माना जाने लगा। लेकिन कालान्तर में बड़े राज्यों के उदय के साथ वर्णव्यवस्था जटिल होती चली गयी इन संस्थाओं में अनेकानेक निषेध, प्रतिबंध, कठोरता और जटिलायें होती गयी । अब हम देखते है कि वर्णव्यवस्था से जातिव्यवस्था का क्या क्रमिक परिवर्तन था।-**जाति'** शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के **जन्'** धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ- प्रजाति, जन्म, अथवा भेद से लिया जा सकता है। अंग्रेजी के **'कास्ट'** शब्द से जाति का व्यवहार किया जाता है यह 'कास्ट' पुर्तगाली के कास्टा' से बना है जिसका अर्थ- नस्ल, प्रजाति' और जन्म है। इसके बाद लैटिन' में 'कास्टस' शब्द प्रजाति अथवा जन्मगत आधार पर स्थित व्यवस्था से माना जाता है।

आधुनिक समाजशास्त्रीयों ने भारतीय जातित्यवस्था के संबंध में विभिन्न दृष्ट्यों से विचार किया है तथा यह बगया कि -जातिप्रथा जन्म से प्रभावित वर्गगत ढाँचे पर आधारित ऐसी प्रथा है जिसमें (गतिशीलता,परम्परा) वंशानुगत हो गयी। जो विभिन्न विचारों गुटों में विभाजित होकर चलती गयी। इस स्वरूप के अन्तर्गत जातिव्यवस्था के प्रमुख (3) तत्वों का दिक्दर्शन होता है। पहला-तो यह जाति व्यवस्था में विभिन्न जातियों एक दूसरे की विरोधी होती है, जिसके कारण अलग बन रहती है। दूसरा - यह कि इसमें जन्म की प्रधानता देते हुये व्यवसाय, रक्त. विवाह आदि की अपनी विशेषता परिलक्षित की जाती है जिससे प्रत्येक जाति एक दूसरे से पृथक रहती है। तीसरा- यह कि ये जातियाँ ग्रस्त रहती है।

ऐसी स्थिति में जाति एक सामाजिक समूह के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। तथा इनकी कुछ विशेषताये है-

① जाति व्यक्ति के जन्म पर आधारित है।

② साधारणतया एक जाति के व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह संबंध करते हैं।

③ समाज के अन्दर ऊँच-नींच के क्रम से प्रत्येक जाति पूर्व निश्चित है।

④ प्रत्येक जाति कुछ परम्परागत व्यवसायो को ही करती हैं।

⑤ समाज की प्रत्येक जाति कुछ न कुछ धार्मिक, अधिकारों से वंचित रहती है।

भारतीय समाज में जाति निरन्तर प्रवाहमान रहा। सिर्फ उसमें जातियों उपजातियों की संख्या बढ़ती गयी । खासकर तब जब बड़े-बड़े राज्यों का उदय हुआ, जनसंख्या बढ़ी, अनेक आर्य एवं आर्येतर जातियाँ भारतीय समाज में प्रवेश की। अनेक व्यवसायिक जातियों का उदय हुआ-(कर्मकार, लोहार, बढ़ई चित्रकार, कलाकार) की जनसंख्या बढ़ी और संगठित होकर

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

एक शक्तिशानी स्वरूप धारण कर ली। वैदिक साहित्य में जाति शब्द का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु ऐसे वर्गों का नाम मिलते हैं जो परवर्ती काल में जातियाँ बन गयी जैसे- (उग्र, क्षत्रृ, सूत, पौलकस, चाण्डाल, आयोगव, पंचाल वैदेह, किरात, भील) इत्यादि । ऋग्वेद में (पौल्कस,चाण्डाल)जाति का उल्लेख हुआ है। उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वैदिक काल में कुछ तथ्य विद्यमान थे जिनसे परवर्ती काल में जातियों' की उत्पति हुयी। '**डॉ०पी०वी०काणे**' का विचार है कि- "वर्ण स्वाभाविक वर्गों की व्यवस्था का धोतक था, जो धारणा, वंश, संस्कृति, चरित्र (स्वभाव) एवं व्यवसाय पर मूलतः आधारित है और ब्राह्मण ग्रंथों के रचनाकाल में ही (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) जन्म के आधार पर ही अपना वर्गीकरण कर चुके थे, तथा इस काल अनेक अनार्य और आदिम जातियाँ आर्य समुदाय में प्रवेश कर चुकी थी ।"

धर्मसूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल में वर्णव्यवस्था जातियों में परिवर्तित होने लगे थे। अब व्यक्ति का वर्ण साधारणतया उसके जन्म के आधार पर निर्धारित किया जाता था । धर्मसूत्रों में ब्राह्मणों को सभी से श्रेष्ठ माना गया है। (गौ०धर्मसूत्र) से ज्ञात होता है कि- ब्राह्मण व्यापारी का भोजन ग्रहण कर लेते थे किन्तु शिल्पियों का नहीं करते थे। यद्यपि धर्मसूत्रों में अध्ययन, दान, यज्ञ क्रमशः तीनवर्ण (ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य) के कर्तव्य थे। (गौ०धर्मसूत्र) में ब्रह्मणो को अपने सेवकों के द्वारा कृषि-व्यापार और साहूकार कराने की अनुमति दी गयी । किन्तु ये सब वैश्यों के कार्य थे, बाद में ये सब अलग-अलग जातियों में परिवर्तित हो गए।चार वर्णो के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्ति को जिन्हें- (बौध्दग्रंथो) के अनुसार हिन समझा गया इनमें पांच प्रमुख थी-(चांडाल, वेण,निषाद,रथकार, पुक्कस) प्राचीन पालि साहित्य में समाज का विभाजन दो वर्ग उच्च/हीन में था-उच्च (ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य) की गणना भी, तथा '**विनयपिटक**'(चौथी शताब्दी ई०पू०) से ज्ञात होता है कि (वेणो, चांडालो, निषादो, रथकारों) ने उस समय तक अपनी अलग जातियाँ बना ली। किन्तु (चमार, कुम्हार) आदि हस्तशिल्पियों को वर्ग सम्मिलित नहीं थे। अतः इस कार्य में इतनी संकीर्णता नहीं आयी जितनी बाद में आयी।

(चौथी शताब्दी ई०पू०) में चारों वर्णों के प्राय: सभी कार्य करते थे । जिनका उल्लेख धर्मसूत्रों में है। (कौटिल्य,मनु) ने भी चारों वर्णो का कार्य परम्परागत ही बताया । गया। लेकिन इस काल की विशिष्ट बात यह थी कि अनेक विदेशी जातियों भारत में सम्मिलित हो गई थी, जिसमें (यवन, पहलव, शक, कुषाण, हुण) मुख्य थे। भारतीय परम्परागत (वर्ण) इनसे बचने का प्रयास किया, तत्कालीन साहित्यों में इन विदेशी आक्रमणकारियों को (म्लेच्छ) कहा- (मनुस्मृति२/२३) फिर की ये भारतीय समाज में घुल गयी ।(मेगास्थनीज) - ने बताया कि भारत के तत्कालीन समाज में सात जातियाँ थी, तथा ये भारतीय जातियाँ अपनी ही जाति में विवाह करती थी। अब भी भारतीय वर्णव्यस्था में ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठता बरकरार रखा।

इस काल कि प्रमुख विशेषता चार वर्णों के अतिरिक्त अनेक जातियों- उपजातियों का प्रमुख कारण अंतर्जातीय एवं प्रतिलोम विवाह था । 'मनु' ने- ब्राह्मण पिता, माता क्षत्रिय से उत्पन्न पुत्र को ब्रात्य तथा विवाह को प्रतिलोम विवाह कहा। (मनुस्मृति) में -(अम्बष्ठ, निषाद, सूत, उग्र, विदेह मागध 57 जातियों का उल्लेख किया,और इन जातियों की उत्पत्ति अंतर्जातीय विवाहों के फलस्वरूप हुयी है।(मनुस्मृति 10/12,43,44,48,49)

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED JOURNAL
Volume 09, Issue 01, January 2026

'**गुप्त काल**' के सामाजिक व्यवस्था में वर्णव्यवस्था का स्वरूप जातिगत अर्थात वंशगत रहा। उत्तर भारत में- गंगा यमुना के बीच प्रदेश के ब्राह्मणों, राजस्थान में श्रीमाल ब्राह्मण और गुजरात में नागर ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। इस काल तक आते आते अनेक जातियों का उदय हो चुका था। जाति समाज का एक आवश्यक अंग बन चुका था ।

'**गुप्तोत्तर काल**' में अनेक राजपूत वंशों का उदय हुआ, राजपूत इस काल की सबसे लड़ाकू जाति के रूप में उभरी । उल्लेखनीय है कि यह काल (राजपूतकाल) के नाम से जाना जाता है। राजपूतों के वंशों में (चालुक्य, चहमान, चन्देल, प्रतिहार, परमार, सिसोदिया) प्रमुख थी। और ब्राह्मण इन राजाओं के पुरोहित,मंत्री पद पर आसीन थे । वैश्यों तथा शूद्रों में अनेक उपजातियों का उल्लेख '**पाटनअभिलेख**' जो (भीमदेव द्वितीय) का है. तथा सभी बाहरी जातियों उच्च वर्ण में स्थान न पा सकी और शूद्रों में जगह बना ली। ब्राह्मणों की अनेक उपजातियाँ - 'भीमदेव द्वितीय' के- 'पाटन अभिलेख' तथा 'रायकवाल सकरायमाता अभिलेख' और दाहिया वि०सं०982 के 'पुष्कर अभिलेख' में (आषसथिक, पुरोहित, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, मित्र, दीक्षित, त्रिपाठियों) का उल्लेख है। विहार में' ब्राह्मणों ' की (मैथिली, शकद्विपी,गयवाल, मगध, मठ, द्राविड) उपजातियाँ हुयी। इनमें से किसी वर्ग के सन्तान उसी जाति के कहलाने लगे।

निष्कर्ष-इस प्रकार इन सभी कालों में वैदिककालीन वर्णव्यवस्था से ही अनेक जातियों उपजातियों का कालान्तर में विकास होता गया। जातियों" का विभाजन जन्मगत, प्रदेशगत व्यवसायगत,भाषागत, धर्मगत आदि विभिन्न आधारों पर विकसित हुयी। और विभिन्न जातियाँ देश और काल के अन्तराल के साथ भारतीय समाज की ईकाई रही। आज भी जाति व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत विशेषता बना हुआ है। जाति का मूल आधार जन्मगत है, व्यवसायगत या परम्परागत नहीं। एक ही जाति के लोग अलग व्यवसाय का चयन कर सकते है,लेकिन वैदिक वर्णव्यवस्था का पर्याय नहीं बन सकते। भारत विविध संस्कृतियों का समुच्चय है इसलिये भारत की सहसे बड़ी विशेषता अनेकता में एकता है। इसका उल्लेख धार्मिक ग्रंथों में भी मिलता है। भारत में जातियों की निश्चित संख्या अज्ञात है। फिर भी विभिन्न समाजशास्त्रियों ने भारत में -5 हजार से अधिक जातियों का निवास बताते है।

संदर्भ सूची -

(प्राथमिक स्रोत)

1.मनुस्मृति, श्री पं. हरगोविन्दशास्त्री,चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी 1953.

2.हिन्दू वर्ण व्यवस्था पुनर्विचार और विश्लेषण, रामचंद्र सरोज,राका पब्लिकेशन इलहाबाद,2007.

3 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, सुमन गुप्ता,स्वामी प्रकाशन, जयपुर,2000

4 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,रोमिला थापर,ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन दिल्ली,2001

5 धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ.पी.वी.काणे,उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ,चतुर्थ संस्करण 2014

6 वाल्मीकि रामायण ,उत्तरकांड,गीताप्रेस गोरखपुर

7 विनयपिटक राहुल सांकृत्यायन,मबोधि सभा सारनाथ

8राजस्थान थ्रू दि एजिज, दशरथ शर्मा,

(द्वितीय स्रोत)

10 Bhima II - Wikipedia

11 इण्डिका (मेगस्थनीज द्वारा रचित पुस्तक) - विकिपीडिया

12 Welcome To Deshbandhu College

13 https://share.google/9AELb8k4YKxz2BaPk